उपने लिए एक नई ही जमात अलग से पैदा कर लेता है। अलग-अलग मनुष्य-कृत ग्रन्थों को मान्यता मिल रही है, अलग-अलग गुरू-मन्त्र दिए जा रहे है, अलग-अलग पूजा-पद्धतियां प्रचलित हो रही है, परमात्मा की उपासना के सीान पर व्यक्तियों की पूजा-अर्चना हो रही है ..... उन्हीं की आरतियां उतारी जा रही है .... उन्हीं की बड़ाई में भजन गाए जा रहे है .... धर्म एक पाखण्ड बन गया है .... योग एक व्यवसाय बन गया है . ... कितना अपराध हो रहा है .... बड़े-बूढ़े सब दिशाहीन हो रहे है .... . भावी पीढ़ी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रही है .... राष्ट्र टूट की कगार पर है . ... सामाजिक समरता छिन्न-भिन्न हो रही है .... अनाचार है, दुराचार है, भष्ट्राचार है, द्वैष है, घृणा है, जातिवाद है, मत-मज़हब वाद है .... चारों ओर आंतकवाद का वातावरण है .... यह सब हो रहा है अपने-अपने स्वार्थो के कारण। बीच में से यदि अपना-अपना स्वार्थ हट जाए तो आज भी एक आदि वैदिक धर्म की स्थापना हो सकती है, एक ईश्वर की ही उपासना हो सकती है, सबका एक ही गुरू-मन्त्र हो सकता है, सामाजिक समरता स्थापित हो सकती है और अपना यह देश पुनः विशवगुरू बन सकता है। विश्व-बन्धुत्व का सपना साकार हो सकता है।

दण्डी गुरू स्वामी विरजानन्द जी तथा उनके शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने आप में कितने अनुपम एवं विलक्षण व्यक्तितत्व के मालिक थे कि उन्होंने कहीं भी कभी भी अलग मत चलाने की कल्पना तक नहीं की। अपनी स्तुति, अपनी पूजा तथा अपना अलग से वर्चस्व स्थापित करना तो दूर रहा इस प्रकार की सोच भी उनके लिए न्यायकारी परमात्मा की दृष्टि में महान् अपराध था। उनके लिए तो ईश्वरीय ज्ञान 'वेद' ही सर्वोपरि रहा। महाभारत काल से पूर्व जितने भी ऋषि-महर्षि हुए, तत्व-वेत्ता हए, आचार्य हुए, महापुरूष हुए किसी ने भी अपना अलग मत या सम्प्रदाय चलाने का अपराध नहीं किया। बह्मा, शिव,